अनामिका की कविताओं में उपेक्षित स्त्री

मीनाक्षी बी. पाटील*

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.19501869

ABSTRACT

साहित्य समाज का दर्पण है। यह न केवल समाज की मुख्यधारा को अभिव्यक्त करता है, बल्कि उन वर्गों की आवाज़ भी बनता है जिन्हें सदियों से अनदेखा या उपेक्षित किया जा रहा है। 'उपेक्षित समाज' से आशय उन समुदायों से है जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हैं। जैसे दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, किन्नर, श्रमिक वर्ग या स्त्री और अन्य हाशिए पर स्थित समूह। हिन्दी साहित्य ने ऐसे उपेक्षित समाज या वर्गों के जीवन संघर्ष, वेदना, संस्कृति, अस्मिता आदि को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस आलेख में अनामिका के द्वारा लिखित हिन्दी कविताओं में उपेक्षित स्त्री पर दृष्टिपात करने का प्रयास किया गया है।

KEYWORDS: स्त्री, उपेक्षित, पितृसत्तात्मक, अस्मिता, संघर्ष, स्वतंत्रता।

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, परंतु उस दर्पण में स्त्री की प्रतिछाया न के बराबर है। मैं यह इसलिए कह रही हूँ कि सदियों से स्त्री हाशिए पर रही, उपेक्षित रही। एक लंबे समय तक पुरुष दृष्टि से साहित्य का निर्माण होता रहा। रीतिकाल से लेकर आधुनिक काल के शुरूआती दौर तक स्त्री या तो विलासिता की वस्तु बनी या फिर त्याग की प्रतिमूर्ति। उसमें निहित त्याग की मनोभावना ही धीरे-धीरे उसके पैरों की जंजीर बनते गये। धीरे-धीरे अपनी निजी अस्मिता तथा अधिकारों से वंचित होने लगी। रीतिकालीन कवियों ने स्त्री का नख-शिख वर्णन तो बहुत किया, परंतु उसकी मनोभिलाषा, उसकी बौद्धिकता या फिर उसकी सामाजिक यंत्रणा को संपूर्ण रुप से नज़रअंदाज़ कर दिया। यहाँ स्त्री केवल एक 'भोग्या' बनकर रह गई, जिसका अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व, अस्मिता या अस्तित्व नहीं था। सीमोन द बोउवार के 'स्त्री उपेक्षिता'

* **डॉ. मीनाक्षी बी**. पाटील, हिन्दी विभाग, एस. बी. कला और के. सी. पी. विज्ञान महाविद्यालय, विजयपुर.

की भूमिका में लिखा गया है कि "वह अनिवार्यतः पुरुष के लिए भोग की वस्तु है और इसके अलावा कुछ भी नहीं। वह पुरुष के संदर्भ में ही परिभाषित और विभेदित की जाती है। वह आनुषंगिक है, अनिवार्य के बदले नैमित्तिक है, गौण है। पुरुष आत्म है, विषयी है। वह पूर्ण है, जबकि औरत बस 'अन्या' है।"[1] आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त ने साहित्य में उपेक्षित स्त्रियों को पहचाना और 'उर्मिला' तथा 'यशोधरा' के माध्यम से हाशिए पर स्थित स्त्रियों को स्वर प्रदान किया, जो सदियों से अनदेखा किया गया था। आगे चलकर छायावाद में निराला जी ने 'वह तोड़ती पत्थर' के माध्यम से एक श्रमिक वर्ग की स्त्री को केंद्र में लाया। यह उस उपेक्षित वर्ग की स्त्री की आवाज़ थी जिसे दरबारी या रूमानी कविताओं में कभी स्थान नहीं मिला था। इसके उपरांत 'आधुनिक मीरा' महादेवी वर्मा ने भी स्त्री के उस अंतर्मन की पीड़ा को स्वर दिया जो समाज के कठोर नियमों के कारण कुंठित थी। उपेक्षित स्त्रियाँ अपनी अस्मिता, अस्तित्व, स्वतंत्रता, आत्मसम्मान, समानता आदि के अतिरिक्त आखिर चाहती क्या हैं? इस संदर्भ में महादेवी वर्मा लिखती हैं कि "हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी पर प्रभुता। केवल अपना वह स्थान है, वे सत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परंतु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी।"[2] उपेक्षित स्त्री केवल इतना चाहती है कि उसका मानव समाज में पुरुषों के समान अपनी स्वतंत्र पहचान हो। क्योंकि भारतीय संस्कृति में स्त्री को पुरुष की 'अर्धांगिनी' माना गया है। इसका अर्थ है कि स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक के बिना सृष्टि और समाज दोनों ही अपूर्ण है, तो स्त्री उपेक्षित क्यों होती है? आज की समकालीन कविता में अनामिका, कात्यायनी, प्रतिभा कटियार, निर्मला पुतुल जैसी कवयित्रियाँ उस स्त्री की बात कर रही हैं जो चूल्हे-चौके और पितृसत्ता के बंधनों में उपेक्षित रही। अब कविता उसके 'रूप' की नहीं उसके 'मानवीय अधिकारों' और 'अस्तित्व' की बात करती है। इस संदर्भ में डॉ. प्रभा खेतान लिखती हैं "स्त्री ना गुलाम रहना चाहती है न ही पुरुष को गुलाम बनाना चाहती है स्त्री चाहती है मानवीय अधिकार।"[3] बदलते समय तथा परिवेश के कारण स्त्रियों में उत्पन्न चेतना के परिणामतः वह घर की दहलीज लांघकर आसमान में उड़ने का प्रयास कर रही है। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए पितृसत्तात्मक समाज में उसे कठिन संघर्ष करना पड़ रहा है।

हिंदी कविता में उपेक्षित स्त्री अब अपनी चुप्पी तोड़ रही है। वह अब केवल 'त्याग की देवी' बनकर खुश नहीं है बल्कि एक मनुष्य के रूप में अपनी पहचान बनाना चाहती है। वर्तमान साहित्य में स्त्री चेतना केवल एक विचार नहीं बल्कि महिलाओं द्वारा अपने अस्तित्व और अधिकारों के लिए लड़ी गई लड़ाई का परिणाम है। डॉ. प्रभा खेतान लिखती हैं "स्त्री को अमीर हो या गरीब, श्वेत हो या काली, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी।"[4] आधुनिक कविता में अनामिका का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने कविताओं के माध्यम से स्त्री की पीड़ा ही नहीं, बल्कि उसके भीतर छिपी चेतना, प्रतिरोध तथा आत्म सम्मान की भावना को भी उजागर किया है। उनकी कविताओं में उपेक्षित स्त्री

का चित्रण अत्यंत मार्मिकता, यथार्थपरक और विचारोत्तेजक रूप में सामने आता है। एक घरेलू स्त्री की उपेक्षा पर 'गृहलक्ष्मी-2' में लिखती हैं-

"मैं कैसेरॉल की अंतिम रोटी हूँ! / कैसेरॉल में ही मैं बन्द रही हूँ अब तक/ पीती रही भाप कुछ दिन तक / ठीक से सिंकी रोटियों की/ जो मेरे ऊपर थपियाई गयी थी!/ एक ज़माना वो भी था जब मैं/ लुगदी-लुगदी हो गयी थी-/ भाप दूसरों की पीती-पीती!/ अब या खुदा, उस उधार की / भाप भी बिलाने लगी है!"[5]

इन पंक्तियों से भारतीय घरों की उस कड़वी सच्चाई को दर्शाना चाहती हैं जहाँ स्त्री सब की भूख मिटाने के बाद अंत में बच गई उस रोटी के समान है, जो ठंडी और उपेक्षित पड़ी रहती है। यह प्रश्न उठाया जा रहा है कि क्या स्त्री का अस्तित्व केवल दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद बची हुई 'अवशेष' मात्र है? कविता उस सामाजिक और पारिवारिक बोझ को दर्शाती है, जिसे स्त्री चुपचाप सदियों से सहती आ रही है। उसकी अपनी इच्छाएँ और पहचान उस ढेर के नीचे दबकर 'लुगदी' बन जाती है।

कई सदियों से स्त्रियों ने सहनशीलता को अपना सुंदर आभूषण माना है। जिसके चलते वह धीरे-धीरे इतनी पराई होती गई कि 'स्वयं' को 'पड़ोसन' समझती है। अनामिका की यह 'प्रत्यभिज्ञा' की पंक्तियाँ-

"क्या खुद मैं अपनी पड़ोसिन हूँ? / भीतर ताला खोलने की सी आवाज़/

आती है कभी-कभी/ कभी-कभी गलीचा उठाने की,/ कभी-कभी गमले चले आते हैं धूप में/ कभी-कभी अलगनी सिहरती है।/कुकर की सीटी बजती है कभी आधी रात को।/

प्लेटें खनकती हैं कभी,/ घूँट-भरने तक की आवाज़ आती है।"[6]

क्या खुद मैं अपनी पड़ोसिन हूँ?- यह आत्म विस्मृति को दर्शाती है। पितृसत्तात्मक ढांचे में अपने परिजनों की, पति की, बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करते-करते वह स्वयं अजनबी सी हो जाती है। अपने ही भीतर एक पड़ोसन की तरह रहती है। उसने सदियों से अपनी इच्छाओं और सपनों को दबाकर रखा है। स्त्री अकेली है। कविता के माध्यम से अनामिका कहना चाहती हैं कि स्त्री को बाहरी दुनिया से लड़ने से पूर्व अपने भीतर की उपेक्षित पड़ोसिन 'स्वयं' को पहचानना होगा।

'बीसवीं सदी' कविता बीसवीं सदी के आधुनिक परिवेश में स्त्री की बदलती स्थिति, उसकी स्वतंत्रता और समाज की पितृसत्तात्मक मानसिकता पर एक तीखा व्यंग्य करती है। कविता के माध्यम से कवयित्री ने स्त्री जीवन के उन पहलुओं को छुआ है जो बाहर से प्रगतिशील दिखते हैं, लेकिन भीतर से अभी भी संघर्षपूर्ण हैं। कविता की पंक्तियाँ-

"कितना अच्छा है... यह बीसवीं सदी है / अब पिटकर जा सकती हूँ मैं बाज़ार,/

अपने लिए एक टॉफी ख़रीदकर / जल्दी भुला सकती हूँ मुँह का कड़वापन,/

सारा मीयादी बुख़ार।"[7]

यह स्त्री की विडंबनापूर्ण स्थिति को उजागर करती है। यहाँ 'बीसवीं सदी' तथाकथित प्रगति पर व्यंग्य है, जहाँ स्त्री को घर से बाहर जाने की स्वतंत्रता तो मिलती है, परंतु वह अभी भी घरेलू हिंसा और शोषण का शिकार है। बाज़ार की वस्तुएँ जैसे टॉफी उसके गहरे दुःखों और 'मीयादी बुख़ार' जैसे मानसिक संताप को ढँकने का एक साधन मात्र बनकर रह गई हैं। पितृसत्तात्मक ढाँचे पर चोट करनेवाली अनामिका की एक और कविता समाज में स्त्री की स्थिति और पितृसत्तात्मक ढाँचे को दर्शाती है। उसे बचपन से ही स्त्री होने का पाठ पढ़ाया जाता है। वे 'बेजगह' कविता में अभिव्यक्त करती हैं कि –

"याद था हमें एक-एक अक्षर/ आरंभिक पाठों का-/ राम, पाठशाला जा!/

राधा, खाना पका! / राम, आ बताशा खा! / राधा झाड़ू लगा! भैया अब सोएगा,/

जाकर बिस्तर बिछा! / 'अहा, नया घर है! / राम, देख, यह तेरा कमरा है!'/ और मेरा?"[8]

कविता के माध्यम से लैंगिक भेदभाव का खंडन करती हुई वे कहती हैं कि बचपन से ही लैंगिक भेदभाव उत्पन्न किया जाता है। जहाँ 'राम' को पाठशाला जाने और घर में उसके लिए अलग से कमरा मिलने की बात कही जाती है, वहीं 'राधा' को 'खाना पकाने' और 'झाड़ू लगाने' या 'बिस्तर बिछाने' के निर्देश दिए जाते हैं। कवयित्री ने 'और मेरा?' इस प्रश्न से समाज में स्त्रियों के संपत्ति और व्यक्तिगत स्थान पर अधिकार न होने की कड़वी सच्चाई को उजागर किया है। यह प्रेरणा देती है कि स्त्री को अपनी अस्मिता के लिए अपने ही घर से लड़ाई आरंभ करनी होगी। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को अक्सर पुरुष की इच्छाओं को पूरा करने का एक माध्यम या वस्तु समझा गया है। चाहे वह आर्थिक व्यवस्था हो या सामाजिक ढाँचा, प्रत्येक स्थान पर पुरुष का वर्चस्व रहा है। अनामिका ने विविध व्यवस्थाओं के प्रति अपने विद्रोह को व्यक्त किया है। यह विद्रोह केवल विद्रोह न होकर स्त्री के अंदर छिपी शक्ति को दर्शाता है।

अंततः पुरुष का वर्चस्व स्थापित करनेवाली सामाजिक संरचना में जब तक परिवर्तन नहीं होगा तब तक स्त्री अस्मिता, अस्तित्व या पहचान को एक जगह प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना ही होगा। 'स्त्री मानवता का आधा हिस्सा' होने के बावजूद वह आज भी शोषित है। सामाजिक परंपराएँ तथा मान्यताएँ स्त्री की उपेक्षा को बनाए रखने में अहम् भूमिका निभाती हैं। कई बार परंपराओं के नाम पर स्त्री को सीमित कर दिया जाता है और उसकी स्वतंत्रता को नियंत्रित किया जा रहा है। अनामिका की कविताएँ स्त्री को अपनी पहचान बनाने, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने और समाज में समानता स्थापित

करने की प्रेरणा देती हैं।

संदर्भ सूची:

1. डॉ. प्रभा खेतान, हिन्दी रूपांतरण- स्त्री उपेक्षिता, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली, संस्करण- 2002, पृ. सं -23
2. डॉ. गजला वसीम अब्दुल बशीर, डॉ. वसंत कुमार गणपत माळी, समकालीन महिला लेखन एवं नारी चेतना, विकास प्रकाशन, 311 सी, विश्व बैंक बर्रा कानपुर, पृ. सं -183-184
3. वही, पृ. सं -75
4. डॉ. प्रभा खेतान, हिन्दी रूपांतरण- स्त्री उपेक्षिता, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली, संस्करण- 2002, पृ. सं -19
5. अनामिका, दूब-धान, वाणी प्रकाशन, 4695, 2-ए दरियागंज, नई दिल्ली-02, पृ. सं -67
6. वही, पृ. सं -83
7. वही, पृ. सं -61
8. सं-डॉ. सुभाष तळेकर, डॉ. सुरेश साळुंके, काव्यायन काव्य संग्रह, जगत भारती प्रकाशन, सी-3, 77 दूरवाणी नगर, एडीए, नैनी, इलाहाबाद-08, पृ. सं -69